Golden Research Thoughts
International Recognition Multidisciplinary Research Journal
RNI : MAHMUL/2011/38887
ISSN No: 2231-5063
Impact Factor 3.4052 (UIF) [Yr.2014]

ISSN 2231-5063 Impact Factor : 3.4052(UIF) Volume - 5 | Issue - 7 | Jan - 2016

आज की दलित एवं स्त्री विमर्श से जुड़ी कहानीकारों की रचना धर्मिता

डॉ.दुर्गावती सिंह
असि.प्रो.हिंदी,आर्य महिला डिग्री कालेज,शाहजहाँपुर.

प्रस्तावना :

जब विधाता पुरुष का निर्माण तब वह एक स्कूल मास्टर था, किंतु जब नारी निर्माण के लिए उद्धृत हुआ, तो वह सहसा एक कलाकर हो गया और उसके हाथ में केवल रंग और तूलिका थी।

दलित विमर्श दलित आंदोलन से जुड़ा है। वह गैर दलित (सवर्ण)द्वारा निर्मित वर्ण व्यवस्था के भेदभाव से मुक्ति चाहता है। वह उसके वर्चस्व को तोड़ता है और मनुष्य को मनुष के रूप में स्थापित करना चाहता है। वह छुआछूत व भेदभाव को मानव निर्मित और अमानवीय दुष्कृत्य मानकर उस पर तर्कपूर्ण प्रहार करता है। वह ईश्वर, पुनर्जन्म, अवतारवाद, स्वर्ग–नरक पर विश्वास नहीं करता है। वह प्रत्येक भौतिक जगत की समस्याओं का भौतिक समाधान प्रस्तुत करता है। वह सवर्णों के वर्चस्व को तोड़कर दलितों के वाजिब वर्चस्व को स्थापित करना चाहता है।

– शरणकुमार लिम्बाले

स्त्री विमर्श का दर्शन वस्तुतः स्त्री की मुक्ति वास्तव में पुरुष के वर्चस्व से मुक्ति, पराधीनता से मुक्ति पाना है। यह मुक्ति मानसिक भौतिक के साथ है। मानसिक मुक्ति का संबंध सांस्कृतिक मुक्ति से है, सामाजिक सोच के परिवर्तन से है। भौतिक मुक्ति का संबंध आर्थिक मुक्ति से है। उसके स्वालम्बी और आत्मनिर्भर बनने से है। इसका एक दूसरा पक्ष देह मुक्ति से भी संबंध रखता है इसी से उसे मुक्ति भी मिल सकती है।

– प्रभा खेतान

प्रथम कथन से स्पष्ट है कि जब विधाता ने स्त्री को निर्माण के समय ही पुरुष से श्रेष्ठ रूप में सृजित करदिया है तो उसकी इस श्रेष्ठता को पुरुष क्यों स्वीकार करता? यदि पुरुष स्त्री की श्रेष्ठता न भी स्वीकार करे तो कम से कम बराबरी का दर्जा दे अर्थात् उसे दोयम किस्म का आदमी न माने और न उसे भोग्यवस्तु के रूप में स्वीकार करे, तो स्त्री पुरुष के सारे झगड़े फसाद जो विकसित अर्द्धविकसित और अविकसित समाज तथा विश्व के अनेक देशों मे भिन्न–भिन्न रू॰ में देखे जा रहे हैं, न हों। लेकिन पुरुष है कि अपना वर्चस्व बनाये रखने के लिए दलितों को निरंतर अपमानित करते रहते हैं। ऐसी स्थिति में दलित अपने वाजिब हक के लिए आंदोलन व लड़ाई लड़ता है तो इसमें उसका कसूर क्या है? क्या मनुष्य–मनुष्य में अंतर है यदि नहीं तो छुआछूत और भेदभाव की नीति से मनुष्य का मनुष्य से अलगाव कैसा? फिर जिस वर्णव्यवस्था को आधार बनाकर इस छुआछुत व भेदभाव को सृजित किया गया है उसे विधाता ने नहीं, सवर्ण द्वारा निर्मित है। फिर सवर्ण को किसने यह अधिकार दिया है जो मनुष्य मनुष्य में अंतर करे? विकसित समाज और भूमण्डलीकरण के दौर में न कोई वर्ण, रंग भेदभाव मान्य है तो फिर क्यों भारतीय समाज के सवर्णों को यह स्वीकार नहीं है,

क्योंकि यही उनके वर्चस्व कायम करने का मूलआधार है। आज सवर्णों के इस वर्चस्व को समूल नष्ट करने के लिए दलित वर्ग अग्रसर है, क्योंकि वह मनुष्य को मनुष्य दृष्टि से देखता है। आज वह अपने वर्चस्व की लड़ाई के प्रति जागरूक और सजग है। उनके तर्कपूर्ण प्रश्नों का सवर्णों के पास कोई उत्तर नहीं है। जब तक भारतीय समाज विकासशील अवस्था से विकसित अवस्था की स्थिति में पदार्पण नहीं कर लेगा यह दोनों लड़ाईंया जारी रहेगीं, क्योंकि भारत देश व समाज के उच्च पदों पर सवर्ण व पुरुष लोगों का ही आधिपत्य है। जब उच्च पदों पर दलित और स्त्रियों का आधिपत्य हो जायेगा तो दलित अदलित और स्त्री–पुरुष के वर्चस्व की लड़ाई मानसिकता के बदलाव के साथ खत्म हो जायेगा। लेकिन इसमें अभी देर है, इसीलिए यह लड़ाई लड़ी जा रही है। द्वितीय और तृतीय कथन क्रमशः दलित–विमर्श और स्त्री–विमर्श की इसी गाथाओं की सूक्तियाँ हैं जिसमें दोनों आंदोलनों से मुखतिम कराया गया है।

आज हिंदी कहानी की रचनाधर्मिता को लेकर कई बार यह अनुभव होता है कि पुरुषों से अधिक स्त्रियाँ सक्रिय है। ये स्त्रियाँ भारतीय भी हैं और प्रवासी भी हैं। आज उन्होंने क्रोशिए के स्थान पर कलम थाम ली है यह शिक्षा के प्रचार–प्रसार और उनकी जागरूकता एवं विचारशीलता से सम्मान हुआ है। आज भी वे भारतीय समाज की विषम परिस्थितियों से निरंतर जूझ रही हैं। समाज की तमाम बंधनों और वर्जनाओं के बीच यदि वे स्वयं को अभिव्यक्त करने की जोखिम उठाती हैं तो इसे एक साहसिक कर्म ही माना जायेगा। रचना कर्म के स्तर पर भले ही भारतीय और प्रवासी स्त्री रचनाकारों के परिवेश, देशकाल, पर्यावरण, जलवायु, वातावरण में भिन्नता है, लेकिन इनकी कहानियों को पढ़ते समय किसी भी कोण से ऐसा नहीं प्रतीत होता है कि ये रचनाएँ, भाषा और शिल्प–प्रयोग आदि की दृष्टि से प्रवासी कहानी लेखिकाओं की कहानियाँ हिंदी की चर्चित कथा लेखिकाओं की कहानियों से किसी भी कोण से कम महत्वपूर्ण नहीं है। इनकी कहानियों में भारतीयों जैसी ही हिंदी कहानी के कथ्य और शिल्प के स्थापत्य में क्रांतिकारी बदलाव किया गया है। इन कहानियों से कहानीपन गायब हो चुका है, क्योंकि आज की हिंदी कहानी ने हिंदी की गई गद्य विधाओं को अपने भीतर समेट लिया है। यह उनकी शक्ति है न कि सीमा। रवींद्र कालिया का यह कथन इस तथ्य की पुष्टि करता है,''आज हिंदी कहानी ने कथ्य और शिल्प के स्तर पर कहानी के स्थापत्य में जो क्रांतिकारी तोड़फोड़ की है, उससे वे महानुभाव सर्वथा अपरिचित हैं। वह यह नहीं जानते कि कोई भी विधा जड़ नहीं होती। वह लगातार अपनी सीमाओं को चुनौती देती हुई आगे बढ़ है। यदि भाषा, शिल्प और कथ्य के स्तर पर उसमें परिवर्तन नहीं होगा तो वह चेतनाहीन हो जायेगी।''[1]

दीपक शर्मा आज के स्त्री कहानीकारों में एक माना जाना नाम है। ये एक भारतीय हिंदी कहानी लेखिका है जिनका लेखन दलित विमर्श और स्त्री विमर्श से जुड़ा हुआ है। इनकी कहानी 'निकट शॉट' नया ज्ञानोदय जुलाई 08 में छपी है। कहानी का दूसरा पैराग्राफ स्त्रीविमर्श की उस सामाजिक व्यवस्था और जर्जर परंपरा की उद्‌घाटित करता है। एक स्त्री घर में उपस्थित है और पति है कि बाहर से एक रखैल लाकर घर में बिना अनुमति के रख लेता है और विवाहित पत्नी को नौकरानी बनने के लिए मजबूर कर देता है। यह पुरुष के पुरुषत्व, वर्चस्व, अधिकार का दुरुपयोग नही तो और क्या है जिसके बल पर विवाहित पत्नी को घर के बाहर कर दिया जाता है और रखैल को पत्नी का दर्जा दिया जाता है। लेखिका कल्लू के मुँह से कहलाती है, ''बेठौर है। इसके घरवाले ने घर पर दूसरी बिठा ली है और इसे निकाल बाहर किया है।''[2]यह हालत निम्मो सफाई कर्मचारी की थी। इसके पहले वह उसी की पत्नी थी, जिसने रखैल को घर में ला बिठा लिया है। उसका एक छोटा–सा बेटा और बहू है जिसकी उम्र पाँच वर्ष की है वह जिस स्कूल में बतौर कर्मचारी सफाई नियुक्ति हुई है उसके मैनेजर मालकिन के पति हैं और प्रिंसीपल स्वयं हैं। मालकिन को विविध कोटि एवं रंगो वाली चिड़ियों को पालने का शौक है इसीलिए उन्होंने एक कोठरी को चिड़ियाघर बना रखा है। उसके पास खाली जमीन पड़ी हुई है। नगरों, महानगरों, कस्बों में सफाई कार्य से जुड़ी स्त्री नौकरानियाँ घरों में प्रविष्ट मालकिन की विश्वास पात्र बन जाती है और अपनी हर एक बात को मालकिन के सामने रखकर मनवा लेती है। निम्मो इसकी जीती जागती मिशाल है। वह मालकिन के घर की सफाई के बहाने प्रवेश कर रहने का स्थान पा लेती है और बच्चों को स्कूल में प्रवेश भी दिला लेती है। जबकि मालकिन के दोनों बच्चे पब्लिक इंलिश स्कूल में शिक्षा ग्रहण करते हैं दो वर्ष की शिक्षा लेने के बाद निम्मो अपने बेटे को भैया वाले स्कूल में प्रवेश कराने के लिए मालकिन से विनती करती है। मालकिन और उनके पति ने समझाया कि बच्चे के माता–पिता का अंग्रेजी जानना आवश्यक है क्योंकि वहाँ प्रवेश के समय माता–पिता का इण्टरव्यू होता है, तब जाकर प्रवेश मिलता है। लेकिन निम्मो है कि

2

किसी बात को न समझने की जरूरत समझती है और न सुनने की। फिर उसकी बात मानकर बच्चे बेटू का प्रवेश भैया वाले इंग्लिश स्कूल में करा दिया गया। फिर एक दिन उसने अपने घर के आस–पास के बिगड़ते माहौल का जिक्र करते हुए मालकिन को चिड़ियाघर के बगल पड़ी जमीन पर अपना रैन बसेरा बना लिया और बेटू के साथ वहीं रहने लगी। बेटू एक अजीब, उदासीन और झगड़ालू किस्म का लड़का था। माँ से एक दिन इतना झगड़ा कि उसकी ऊँची आवाज मालकिन तक पहुँच गयी। मालकिन ने वहाँ पहुँचकर पूछा तो लड़के ने कहा,''वह समझाती है वह ज्यादा काम पकड़ेगी तो बड़ी बन जायेगी। जानती नहीं वह जितना भी कमाएगी वह हमेशा कम ही पड़ेगा। क्योंकि वह छोटी है और हमेशा छोटी ही रहेगी...बड़ी कभी बन ही नहीं सकती।''[3] निम्मो ने उसके गुस्से की भड़ास को कम करने के कहा कि उन्हीं भैया लोग का तू पहनता है, इन्हीं साहब लोगों का तू खाता है। फिर क्या था वह उबल पड़ा – क्या पहनता हूँ... उनकी उतरन? क्या खाता हूँ– उसकी जूठन।[4] यह था लड़के–लडके यानी मनुष्य–मनुष्य में भेदभाव जिससे दलित वर्ग के बेटे बहू ने आक्रोश और क्रांति चेतना परिवेशगत स्फून हो गई। बाद में मालकिन ने उसे नामी गरामी अंग्रेजी स्कूल में दाखिला करा दिया जिससे उसका बेटा बेटू डॉक्टर बन गया। उसने एक आई.पी.एस. की चौथी बेटी से विवाह कर लिया और माँ को पूछा तक नहीं। बच्चे आज पढ़–लिखकर नौकरी प्राप्त कर लेते हैं और माता–पिता, भाई–बहन आदि को विस्मृत कर देते हैं। आज संवेदना प्रधान रिश्ते मूल्य किस कदर नष्ट हो रहे हैं नई पीढ़ी पुरानी पीढ़ी को कैसे त्याज्य कर रही है? यह सभी प्रश्न लेखिका भारतीय समाज के समक्ष प्रस्तुत करती है। हाल यह है कि बेटू माँ की मृत्यु हो जाने पर अकेले दाह संस्कार में मुखाग्नि देने आता है उसकी स्त्री नहीं। स्त्री जो पुरुष से अधिक संवेदनशील मानी जाती है वही आज कितना निष्ठुर क्रूर बन गई है, यह विचारणीय प्रश्न है जिसका उत्तर मिलता है मालकिन और उनके पति से। माँ के दाह संस्कार के बाद जब बेटू मालकिन और उनके पति से रात्रि में रुकने का स्थान मांगता है तो दोनों नहीं कह देते हैं। जब इसी प्रकार प्रतिकार बुजुर्ग पीढ़ी से उन्हें मिलेगा तभी संस्कार व मूल्य का पाठ वे पढ़ेंगे।

मीरा सीकरी एक भारतीय कहानी लेखिका हैं। इनकी कहानी 'किले के विभक्त खण्डों की परछाइयाँ है' जिसमें स्त्री विमर्श से जुड़ी समस्या स्त्री–मुक्ति की कहानी वर्णित है। रेणुका, जया, बिन्नी तथा उनकी अन्य सहेलियाँ घर की चहारदिवारी से मुक्त होकर होटलों–रेस्तरा में खाना खाती हैं, फिल्में देखती है, बाजारों में मस्ती करती है, पिकनिक स्थलों पर बैठकर गप्पे मारती हैं, सास–ससुर की निंदा करती हैं, पतियों की सेक्स भरी बाते करती हैं और बाद में किले की विभक्त खण्डों की परछाइयों की तरह अलग–अलग होकर फिर घर पहुँचती है और चहारदिवारी में बंद होकर घुटन की जिंदगी बिताती हैं। इसी की परिणति से व्यक्तिवादी सोच का विकास और संयुक्त परिवार टूटकर एकांकी परिवार बन गये जिसमें पति–पत्नी व बच्चे आते हैं माता–पिता, सास, ससुर, भाई–बहन नहीं। आज यदि रिश्ते कुछ शेष हैं तो महज स्वार्थ के। स्वार्थ धन जुड़ा है और धन से एकांकी परिवार। धन, पत्नी ओर जमीन संसार के सारे फसादो की जड़ है। इनसे मनुष्य को बचने की जरूरत है अन्यथा मनुष्य जाति का विनाश असम्भावी है।

कृष्णा अग्निहोत्री आज की जानी–मानी हस्ती हैं। इनकी कहानी 'जीना मरना अभी हाल में' प्रकाशित हुई है। इस कहानी में बेमेल बेजोड़ विवाह की समस्या को उठाया गया है। श्यामा–शैलेंद्र का विवाह ऐसा ही विवाह है इनकी चार पुत्रियाँ और वो पुत्र हैं। इन दोनों की पूरी जिंदगी दुख–दर्द की गाथा है। श्यामा ने जब माँ से इस विवाह के न करने का विरोध किया तो माँ उसे करमजली कहती है। फिर भी माँ श्यामा से कहती है कि गला घोंट दो न, यदि मेरे दो रोटी इतनी भारी पड़ती है। ऐसा कहने के पीछे श्यामा व शन्नो का माँ और बुआ की तिल–तिल गलती हुई जिंदगी का अहसास है। इतने विरोध के बाद अनगढ़ पत्थर से उसकी शादी हुई। वह काराग्रह में रहकर दो बेटे और एक बेटी का जन्म दिया। दोनों बेटे पढ़–लिखकर नौकरी पेशे में लग गये। लड़की का विवाह हो गया। लड़कों के विवाह भी हो गये। बहुएं घर में आई, लेकिन सास अकेली हो गयी, क्योंकि बच्चे तो नौकरी पर चले जाते हैं और बहुएं उन्हें लिफ्ट नहीं देती। शन्नो के पूछने पर वह कहती बहुएं यों तो ठीक हैं परंतु मैं उनके लिए सम्मानीय नहीं हूँ। दोनों पैर छूकर छूमंतर हो जाती हैं। बेटे दौरे पर ही रहते

हैं।''[5] बेटों और बहुओं के छल–छद्म से परेशान होकर श्यामा ब्रज आश्रम में जा पहुँची जहाँ उसे एकाकी जीवन ही अच्छा लगने लगा। स्पष्ट है कि स्त्रियाँ बच्चों के लिए प्रतिदान करती हैं और उन्हें उल्टा मिलता है प्रतिकार। यह प्रतिकार न मिले इसके लिए जीवन के प्रमि सोच–सम बदलनी होगी।

3

4

5

आज के हिंदी कथाकारों में मृदुला सिन्हा का ख्यातिलब्ध है। उनकी कहानी 'बेमेल तस्वीरें' में एक प्रवासी भारतीय महिला की समस्या को प्रक्षेपित किया गया है। मोनिका दादा राम और दादी सीता की नातिनी है जो अमेरिका में पति के साथ रहती है। उसके माता–पिता भी अमेरिका में रहत थे जो एक हादसे में मर गये थे। उसके दादा भी कुछ दिनों के बाद स्वर्गवासी हो गये थे। बची थी केवल दादी। उन्हीं के आग्रह पर मोनिका दोनों बच्चों राखी और राकेश को लेकर भारत आई है। दादी का जुड़ाव जागृति संस्कार से है वह मकान उन्हीं को समर्पित करना चाहती है बतौर दान के। प्रवासी भारतीयों की सबसे बड़ी समस्या यह है कि दादा दादी या नाना–नानी के बाद पैतृक घर को कैसे बचाया जाय–दान देकर या बेचकर। बेचने से तो सारी स्मृतियाँ नष्ट हो जायेगी।दान ही स्मृतियों को बचाये रखने या सहेजने का अच्छा साधन है। मोनिका की दादी श्रीराम जी पानी अपनी पति की स्मृतियों के बदौलत ही इतनी लंबी उम्र काट ली। एक बार की बात है दादी के पति ने पत्नी के ललाट पर छोटी बिंदी देख ली, बोले– बिंदी क्यों छोटी कर ली। इससे सुहाग छोटा हो जाता है।''[6] मरते समय तक श्रीराम जी के आँखों में सीता (पत्नी) का बड़ी बिंदी वाला ललाट नहीं देखा।[7] पति की मृत्यु के बाद पत्नी का जीवन कितना एकाकी, विवश, विषादमय हो जाता है क्योकि नारी की वैवाहिक तस्वीरें पति की मृत्यु के बाद बेमेल हो जाती हैं। अतः यह कहानी भी स्त्री विमर्श का हिस्सा है।

रजनी गुप्त आज की स्त्री कहानीकारों में प्रमुख हैं। स्त्री–विमर्श से जुड़ी उनकी कहानी का नाम है–'फिर वहीं से शुरू'। इस कहानी में इण्टरनेट द्वारा की गई शादी की विसंगतियों और भोगे गये यथार्थ अनुभवों तथा उसकी परिणतियों का वर्णन है। सागरिका का विवाह इण्टरनेट के माध्यम से मुनीष से हुआ था। सागरिका एक शिक्षिका थी। मुनीष, अविश्वासी, क्रोधी, लोलुप, विलासी, दमनकारी और क्रूर मिजाज का इनसान है। वह दुष्कर्मी भी है जो 17 वर्ष कह अविवाहित लड़की सन्नो से दुष्कर्म करते पकड़ा गया था वह भी बाहर नहीं, घर में। वह पत्नी के कैरियर को महत्व न देकर उसकी कमाई व शरीर पर एकाधिकार चाहता था। इसी कारण वह सागरिका को तड़पाता, घुटन देता औ गला घोटू जिंदगी जीने को विवश करता था। इसी बीच सागरिका को एक बेटा पैदा होता है। पाँच वर्ष की नरकीय जिंदगी जीने के बाद सागरिका मुनीष को तलाक देकर खुले आकाश में निकल पड़ती है। निर्भीक और सजग होकर उसके अनुसार जीवन एक रिहर्सल है हर दिन नई शुरूआत है क्योंकि कितने मर्द हैं जो बुद्धिजीवी स्त्री की कद्र करना जानते हैं।[8] फिर उसका जुड़ाव कम्प्यूटर बिजनेस मैन सर्वेश से होता है। वह सागरिका से विवाह करना चाहता है लेकिन सागरिका को यह स्वीकार्य नहीं। वह अब जिंदगी को अपने तरीके से जीना चाहती है।

आज दिव्या माथुर एक चर्चित स्त्रीकथाकार के रूप में सुविख्यात हैं। उनकी कहानी 'पंगा' में स्त्री–विमर्श से जुड़ी एक समस्या को निराकृत किया गया है। पंगा का अर्थ मोर्चा लेना, झगड़ना, जिसका कोई औचित्य ही नहीं है। आज की पढ़ी लिखी स्त्री मोटर साइकिल, स्कूटर, कार बड़े धडल्ले से चलाती हैं। उनकी इच्छा रहती है कि चालक की हैसियत से वह पुरुषों से आगे रहें पन्ना ऐसी ही स्त्री है जो निरंतर चालक के रूप में पुरुषों से पंगा लेती रहती है। उसका पुत्र आदित्य और बहू आशिया उसे समझाते हैं लेकिन सब बेकार। वह मुँहफट, धुन की पक्की, कार चलाने में माहिर, गालियाँ देने में एक्सपर्ट है। अपनी कार से पन्ना ने सभी को नुकसान पहुँचाया है लेकिन उसे इसका मलाल या गम नहीं। क्योंकि यह उसके मिजाज के खिलाफ है। यदि होश का ध्यान रखे बिना आज की नारियाँ असी प्रकार की गतिविधियाँ करती रहेंगी तो उनमें दुराग्रह और क्रूरता बढ़ेगी जिससे उनकी सामाजिक मर्यादा व मूल्य में ह्रास होगा।

स्त्री–विमर्श से जुड़ी कहानीकार रमणिका गुप्ता की कहानी 'गुड़िया' में सेक्स समस्या और मनुष्य के रंगभेद की समस्या को चित्रित किया गया है। ये गुड़िया प्रेम और स्मृति की प्रतीक है। गुड़िया का मम्मी संबोधन उनकी स्मृति को कुरेदती है और वे राजनीति के दौरान किये गये प्रेम सेक्स को याद करती हैं। वे कहती हैं, ''यूँ तो कई पुरुष मरे जीवन में आये और चले गये... मगर यह प्यास है कि बुझती ही नहीं, इक हूक सी उठती है दिल में, कि कोई आगे जीवन में।''[9] वे मनोविज्ञान की छात्रा रही थी। उनके साथ गारे–काले रंग के कई देश के छात्र–छात्राएं पढ़ती थीं। उन्होंने बर्लिन के सम्मेलन में गोरे–काले के वैवाहिक जोड़ों को देखा और निष्कर्ष निकाला कि काले रंग के मनुष्य गोरी रंग की पत्नियों को ज्यादा प्रेम करते हैं और सुख देते हैं। इसके विपरीत गोरे रंग के मनुष्य काले रंग की पत्नियों का शोषण करते हैं क्योंकि क्या गोरा सदैव हासिल करता है

6
7
8
9

क्या काला सदैव समर्पित होता है? इसी प्रकार गोरा दम्भ से भरा रहता है और काला हीन भावना से ग्रसित होता है।[10] फिर अपने आप से प्रश्न करती है कि क्या सेक्स के बारे में सोचना पुरुषों का एकाधिकार है स्त्रियों का नहीं। वहज विद्रोह कर इस पर पुरुषों जैसा ही विचार करती है और पुरुष मुक्ति और देह मुक्ति की राह ढूँढती है।

गजल जैगम एक ऐसी हिंदी कहानीकार हैं जो इन दोनों विमर्शों से पृथक सोच रखते हुए अपनी धरती देश की खुशबू से जुड़ी हुई हैं। एक भाई जो अपनी बहिन से आठ वर्ष छोटा था, विवाह के बाद पति तथा बच्चों के साथ लंदन रहती है। उसकी माँ बचपन में ही चल बसी थी इसलिए उसने अपने छोटे भाई को अपने बच्चों जैसे ही पाला था। वह सदेव भपाइ से बड़ों जैसा–सा रवैया रखती है। वह आजादी के लिए प्रसन्न था कि मेरी बहिन शादी के बाद लंदन जा रही है। लेकिन इतने के बाद भीवह बहनोई के मोटेपन से चिढ़ता था– मेरी बहिन तो इतनी नाजुक–सी, एकदम मौलश्री का फूल थी और वह मोटा। मुझे उस पर गुस्सा आ रहा था कि ये मेरी बहिन को क्यों ले जा रहा है।[11]

बहिन के चले जाने के बाद उसकी रिक्तता उसे खलल डालने लगी। घरों के हर स्थान पर बहिन की उपस्थिति से वह परेशान रहा। फिर जीवन ढर्रा बदला। मैंने पढ़–लिखकर नौकरी प्राप्त कर ली, लेकिन बहिन के पास न जा सका। मेरे जन्मदिन पर बहिन से मिलने लंदन जा पहुँचा। बहिन की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा भाई से मिलकर, लेकिन जीजा के बेरुखी से उसे कष्ट हुआ। वह बहिन, बच्चों से अपने देश भारत चलने को कहा करता था लेकिन बच्चों ने गाँवों की असुविधा का ध्यान दिलाकर सॉरी कह दिया था। इसका समर्थन जीजा ने किया। फिर वह केवल बहिन को अपने गाँव देश को चलने के लिए कहता है तुम मेरे साथ चलो अपने गाँव, अपने देश। चलो तुम, मैं तुमको ले जाता हूँ। देखता हूँ तुम्हारे भाई को कौन रोक सकता है। नहीं भैया, नहीं पप्पू वह नाराज हो जायेंगे।[12] न जाने के बाद भी उसकी बहिन कहती है मेरी जड़े तो वहीं हैं भैया... मेरा वजूद भी वही है, सिर्फ जिस्म ही तो यहाँ आ गया है। मैं कैसे तुम सबका भूल सकती हूँ।[13] भाई को जीजा के प्रति नफरत का जो जज्बा उभरता है उसे दिल में समेटे वह वहाँ से चला आता है क्योंकि वह नहीं जानता है कि हिंदुस्तान सिर्फ दिलों का देश है, जज्बों का देश है, मुहब्बत का देश है, खुलूश का देश है। जो खुशबू इस देश में है वह कहीं नहीं मिलता। इस खुशबू से यहाँ हर व्यक्ति जुड़ा रहता है देखा जाये तो इस कहानी की स्त्री पात्र बहिन देश के पलायन यानी विदेश लंदन जाने के बाद भी अपनी जड़ों से जुड़ी हुई है। वह देश गाँव की धरती की खुशबू से निरंतर जुड़ी है।

वंदना राग दलित विमर्श से जुड़ी कहानीकार हैं। गाँव के लोग भूख प्यास को मिटाने के लिए शहर नगर जाते हैं और भीख माँगने के कर्म से रिश्ता जोड़ लेते हैं। भागीरथी, मुसद्दी इसी तरह के पात्र हैं जो अपने गोरख धंधे में लगे रहते हैं और एक खाली पड़े बरामदे में रहते हैं। इस बरामदे में रहने के लिए यदि तीसरा भिखारी आता है तो उससे पाँच रुपये माहवारी किराये लिये जाते हैं। ये पेट के लिए चोरी भी करते हैं और पुलिस के डण्डों के शिकार बनते हैं। उनका जीवन जितना दर्दनाक है उतना ही शर्मनाक। लेकिन पेट भूख की ज्वाला अग्नि की ज्वाला से भी विकराल होती है जो यह सभी कुकृत्य कराता है। वंदना राग की 'टोली' कहानी इसी का नमूना है।

निर्मला सिंह ने स्त्री–विमर्श के तहत एक विधवा माँ की दयनीय स्थिति–बोध के साथ जीवन– मूल्यों के ध्वस्त होने की कथा को इतने मार्मिक ढंग से चित्रित किया है कि 'संदूक' कहानी अपने आप में सजीव हो उठी है। विधवा माँ का पति शहर का जाना माना ईमानदार व्यक्ति था और उसका बेटा आदित्य उतना ही बेईमान। बहू भी पति के साथ थी और दोनों मिलकर माँ की सेवा नहीं कर पा रहे थे। बेटा आई.ए.एस. ऑफिसर था जो कालाधन कमाकर घर में संग्रहित किये था। एक इनकम टैक्स वालों का ध्यान दो नक्शों पर गया उनमें एक बहू का था एक विधवा माँ यानि सास का। आँधी में उड़ते सूखे पत्तों से उसके घर के आदर्श, सिद्धांत उड़ रहे थे और बैठी टुकुर–टुकुर घायल पक्षी–सी देख रही थी। उसके अंतरतम में एक टीस–सी उठी कि क्या उसका बेटा धन के पीछे इतना पागल हो गया है कि ब्लैक धन से घर भर लिया टा उसे हवा तक नहीं लगने दी। जब भी उसने कोई फरमाईश की, बेटा–बहू महंगाई का रोना लेकर बैठ जाते थे। उसके लिए साल में दो

10

11

12

13

धोतियाँ लाना भी दूभर हो जाता था।[14] एक मासूम बच्ची–स ीवह गूंगी बन सब दृश्य निहार रही थी। बहू के सारे गहने भी उन्होंने संदूक से जब्त कर लिये। सबसे बाद में माँ का संदूक खोला गया तो उसमें सूखी रोटियों का जखीरा निकला तो उन्होंने आदित्य के विधवा माँ से पूछा कि माँ जी यह सूखी रोटियाँ आपने क्यों रखी हैं? माँ ने कहा – बेटा, यह रोटियाँ मैं पानी में भिगोकर उस समय खाती हूँ जब मेरी बहू और बेटा पार्टी में डिनर लेने जाते हैं और किचन में मेरे खाने के लिए कुछ भी नहीं होता है।[15] यह आज के आधुनिक स्थिति में बड़े हुए बहू एवं बेटों की, जिन्हें अपने जड़ और जमीन से ही प्यार नहीं है। वे इतने खुदगर्ज हो गये हैं, एकाकी हो गये हैं, व्यक्तिवादी हो गये हैं कि उनकी सीमा में माता–पिता, सास–ससुर, भाई–बहिन के रिश्ते ही नहीं आते।

अरुण सब्बरवाल की कहानी 'वह चार परांठे' इस समय चर्चा में है। माँ–बेटी, पिता, बस, परिवार के यही अंग है। माँ कामचोर है वह पति का नाश्ता तक बनाने से कतराती है। एक दिन बेटी से वह बोली–''तुम्हारा बाप है न जो वह भी हट करता है, स्वयं तो नाश्ता करता नहीं, परंतु हर रोज मैं चार–चार बड़े परांठे दफ्तर के लिए बना कर देती हूँ फिर घर में आते ही भूख भूख करने लगते हैं जैसे कभी कुछ खाया ही न हो। वैसे तो घर में बहुत थोड़ा खाते हैं न जाने दफ्तर में भूखे सांड़ की तरह से हो जाती होगी।''[16] स्त्रियों की कामचोरी स्त्री–विमर्श का एक हिस्सा है। कामचोर स्त्रियाँ स्वभाव से चिढचिढ़ी और तीखे मिजाज की होती हैं। इस कहानी की माँ ऐसी ही स्वभाव की स्त्री है जो पति पर निरंतर भौंरे की तरह भिनभिनाती रहती है। लेकिन बेटी उससे पृथक स्वभाव की है जिसकी पिता से खूब पटती है। वह पिता से प्रश्न करती है कि आपको माँ पर गुस्सा क्यों नहीं आता ऐसे, आचरण से। वह बोले– मैं तो समझ लेता हूँ कि कोई जानवर भौंक रहा है। यह उत्तर सुनकर वह उनकी सहजता और निर्लिप्तता की कायल हो जाती है। पिता मिरगी के रोगी हैं जो अनेक बार सड़क पर गिरकर जख्मी हो चुके हैं लेकिन बड़े परोपकारी जीव।दूसरों के दुख को अपने दुख कष्ट से ज्यादा एहसास करते हैं। एक दिन मिरगी के आने से वे सड़क पर गिरे और सिर फूट गया। मिसेज एय्यर ने अपनी साड़ी फाड़कर घाव को बाँधा और खून से सने कपड़ों को लेकर उनके घर पहुँची और बतलाया कि मि. कक्कड़ सड़क पर पड़े थे। मैंने उन्हें अस्पताल में भर्ती करा दिया है आप मेरे साथ चलें। फिर वह बोली– ''माफ करना। मेरे पास पट्टियाँ नहीं थीं, मैंने अपनी साड़ी फाड़कर उनका बहता खून रोकने की कोशिश की थी।''[17] एक अनजान औरत की इनसानियत से माँ द्रवित हुई। अस्पताल से पापा घर आये। एक दिन अचानक एक अपंग सागर सागर कहकर दस्तक दिया। पिताजी भिखारियों की बड़ी इज्जत करते थे और बिना कुछ खिलाये–पिलाये द्वार से जाने नहीं देते थे। सागर पिता का फर्स्ट नामा। भिखारी बाबा के मिलने के आग्रह का बेटी ने कारण पूछा तो बाबा बोल पड़े – ''बेटा, मैं सात दिन से भूखा हूँ। पिछले बीस वर्षों से सागर मुझे रोज चार परांठे, दो सुबह, शाम देता है।''[18] यह वाक्यांश सुनकर हम सबकी आँखों में आँसू आ गये। यहाँ तक कि मेरी माँ के भी। माँ शर्म से डूबती जा रही थी। मेरी माँ की बीस साल की जो उलझन थी वह सुलझ गई। आज स्त्रियों में इनसानियत का जो अभाव देखा जा रहा है उसी को साक्षीकृत कराना कहानी का प्रमुख सरोकार है।

जयंती सिजवानी की कहानी 'अंतिम पड़ाव' में स्त्री–पुरुष के आचरण में बुजुर्ग पीढ़ी को लेकर जो बदलाव आये हैं, उसी का यथार्थ चित्रण किया गया है। पुरानी पीढ़ी की अवहेलना अवमानना की धुरी स्त्री है जो पुरुष को उकसाकर उन्हें प्रताड़ित करवाती है दुख पहुँचाती है। लेकिन बाल सुलभ मन पर इसका बुरा प्रभाव पड़ता है। दादा के मरने के बाद अपने माँ–पिता के विपरीत आचरण पर विभा(पुत्री) स्तब्ध है। रहना किसी को नहीं, सबको एक दिन जाना है इस सत्य को जानते हुए लोग मनुष्य नहीं बन पा रहे हैं यह विवशता है। व्यक्तिवादी विचारधारा के तहत एकाकी परिवार की जो विसंगतियाँ है वह सबसे अधिक प्रभावी हुई हैं, बुजुर्ग पीढ़ी पर। सामाजिक विघटन के बाद पारिवारिक विघटन की जड़ में बैठी स्त्री ही इसे रो सकती है। उसे आग आकर इसे रोकना पड़ेगा। अन्यथा उसकी भोक्ता स्वयं बनेगी।

स्पष्ट है कि इन विभिन्न कहानियों में कहानीपन नहीं है। कथा कहीं आत्मकथात्मक है जो कहीं जीवनीपरक,कहीं रिपोर्ताज तो कहीं संस्मरणात्मक। संवाद लंबे अर्थप्रधान हैं। पात्रों की संख्या में कमी दिखाई पड़ती है। पात्र जिंदगी से जुड़े हैं, परिवार और समाज से भी। भाषा काल्पनिक न होकर यथार्थ है, सजीव व

14
15
16
17
18

स्पष्ट है। बिंबों–प्रतीकों का प्रयोग घटा है। शैली विवरणात्मक है और विचारात्मक भी। जीवन के अनेक घटकों में दलित स्त्रियों की मानसिकता और कर्म को साकार करती ये कहानियाँ हमें हर दृष्टिकोण से सुधरने और जागृति पैदा करने में मदद कर रही हैं। इसी दृष्टि से इन कहानियों का विशिष्ट महत्व है।

संदर्भ :

1. नया ज्ञानोदय, जुलाई, 2008 पृ.6
2. वही, पृ.29
3. वही, पृ.30
4. वही, पृ.40
5. वही, पृ.43
6. वही, पृ.46
7. वही, पृ.69
8. वही, पृ.70
9. वही, पृ.73
10. वही, पृ.75
11. वही, पृ.86
12. वही, पृ.88
13. वही, पृ.94
14. वही, पृ.95
15 वही, पृ.95